योगवाणी

वर्ष ५०, नवंबर २०२५

योगवाणी

वर्ष ५०, सितम्बर, २०२५

आर.एन.आई. २९०७५/७६

"मानव जीवन में योग की साधना की परम उपयोगिता सहज सिद्ध है। योग ही एक ऐसा निरपेक्ष साधन मार्ग है जिसके आश्रय में सर्व सामान्य को जीवन की व्यवहारिकता और सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान सुलभ होता है"

राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

वार्षिक सदस्यता : १२५/-
द्विवार्षिक सदस्यता : २५०/-
पंचवार्षिक सदस्यता : ६००/-
आजीवन सदस्यता : १२००/-
एक प्रति का मूल्य : १५/-

मुद्रक:
मोती पेपर कनवर्टर्स
डी-4/1, सेक्टर 13
गीडा, गोरखपुर
दूरभाष : 0551-2580093

विषयानुक्रम

	पृष्ठ
जीवनामृत	
श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः	०२
योगामृत	०३
गोरखवाणी	०४
राशियों का मासफल	०५
नाथपन्थ एवं दर्शन	
भारतीय तत्त्व चिन्तन और योग -योगी आदित्यनाथ	०७
हठयोग- सुभाष विद्यालंकार	१२
जीवन और दर्शन -अनुपम वत्स	१८
धर्म, संस्कृति एवं अध्यात्म	
आधुनिक युग में संस्कृत की उपादेयता -ब्रह्मदत्त द्विवेदी	२०
मूल्य शिक्षा की प्राचीन अवधारणाएँ - विजय प्रकाश मिश्र	२५
पुराणों में पर्यावरण- कृष्णचन्द्र शुक्ल	२६
चतुर्थ आवरण	
सिंघाड़ा एक औषधि - सुरेन्द्र कुमार	

॥ ॐ नमो भगवते गोरक्षनाथाय ॥

योगवाणी

(धर्म-संस्कृति, अध्यात्म एवं योग प्रधान पत्रिका)

संस्थापक-सम्पादक

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ

प्रधान सम्पादक

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. प्रदीप कुमार राव

सम्पादक

डॉ. प्रांगेश कुमार मिश्र

प्रकाशक

श्री गोरखनाथ मन्दिर

गोरखपुर - २७३०१५

web: www.gorakhnathmandir.in

E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com

दूरभाष : (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४

॥ श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः ॥

प्राणो दक्षिणपक्ष एष विततोदानो भवत्युत्तरः,
पक्षो व्यानशिरो विशालहृदयं, मध्यं समानोऽपरः।
वायुः पुच्छमतुच्छमेव भजतां, नीडं निकायो जड
माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथो विभुः ।।1।

भव्यं सत्यमृतं च पक्षयुगलं, वाणी शिरः प्राणिना–,
मात्माऽशेषविशेषदोषरहितः श्रद्धैव पुच्छं फलम्।
सर्वं तुच्छमनुप्रविश्य सहसाऽतुच्छं पुरा व्याकृतं,
माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथो विभुः ।।2।।

पश्यैतद्यजुरेव साङ्गमखिलं, नित्यं शिरो निर्मल,
मृक्सामात्मकवेदयुग्ममतुलं, पक्षद्वयं पक्षिणः।
आत्मादेशपरा ऋगेव सफलाऽथर्वेव पुञ्छं परा,
माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथो विभुः ।।3 ।।

श्रुत्या जन्यमिदं प्रियं सितशिरो मोदप्रमोदावहं,
पक्षावुत्तरदक्षिणावसुभृदानन्दोऽयमात्मातुलः।
पुच्छं ब्रह्म तदादिवाक्यगतया, वृत्त्योपलक्ष्यात्म।
तन्माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथो विभुः ।।4।।

मानेन मानेन समाश्रितानां
मानं समानं मम नाथ ! भूयात्।
मानेन मानेन समाश्रितानां,
मानं समानं मम नाथ भूयात् ।।5।।

इति श्रीराजस्थानशेखरीभूतयोधपुराधिराज मानसिंहदेवविरचितं तैत्तिरीयोपनिषदनुसारं
(हंसचित्रं) श्रीगोरक्षनाथाष्टकं सम्पूर्णम्

योगामृत

गोरक्ष उवाच :-

गुरुजी ! कौन शून्यते जोति पलटे? कौन शून्य वाचा फुरे
कौन शून्यते त्रिभुवनसार? कौन शून्यते उतरे पार? ॥६५॥

भावार्थ–हे गुरु ! किस शून्य की ज्योति दर्शन कर पवनप्राण पलटे? किस शुन्य से वाणी का संस्फुरण होता है? किस शुन्य से तीनों लोकों का सार तत्व उद्बोधन होता है? किस शुन्य से पार उतरना है?

मत्स्येन्द्र उवाच :-

अवधू ! उग्र शून्यते जोति पलटे, आकाश शून्यते वाचा फुरे?
परम शून्यते त्रिभुवन सार, अतीत शून्यते उतरे पार ॥६६॥

भावार्थ–हे शिष्य ! उग्र शून्य से ज्योति पलट कर त्रिकुटी में साधक को दर्शन होते हैं, अभय शून्य से वाणी का उपादान कारण बनता है, परम शुन्य ही तीनों लोकों का आवास उत्पति द्वार अतीत शून्य (भयावह दृश्य) से पार उतरना है।

गोरक्ष उवाच :-

गुरुजी ! कथं क्षुधासमुत्पत्तिः? कथमाहारसम्भवः?
कथमुत्पद्यते निद्रा? कथं कालस्य सम्भवः ॥६७॥

भावार्थ– हे गुरु ! भूख का जन्म कहाँ से, भोजन वृत्ति (क्षुधा तृप्ति) युक्ति का जन्म कहाँ से हुआ। शय्याकाल में निद्रा का जन्म कहाँ से होता है और काल (मृत्यु - यम) का जन्म कहाँ से होता है।

मत्स्येन्द्र उवाच :-

अवधू ! मनसा क्षुधा उत्पत्तिः, क्षुधयाऽऽहारसम्भवः ।
आहारसम्भवा निद्रा निद्रायाः कालसम्भवः । । ६८ ॥

भावार्थ– हे साधक ! मन की विवेक वृत्ति से भूख का, भूख की आवश्यकता पूर्ति हेतु पूर्ण खोज से आविष्कृत भोजन (क्षुधा निवृत्ति) का जन्म हुआ। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चौष्यादि चतुर्विध भोजन से निंद्रा (स्वप्न–सुषुप्ति) अवस्था की उत्पत्ति और निद्रालस्य से काल (मृत्यु जनक प्रवृत्ति) का जन्म होता है।

(गोरक्ष–मत्स्येन्द्र संवाद)

■

गोरखवाणी

ग्यांन-चौतीसा

आदिनाथादि पारब्रह्म ॐसिव सकती।
नाद-बिंद ले काया उतपती।
नादबिंद रूपी बोलिये ॐकार।

बिंदरूपी बोलिये काया। प्रथम आदि उतपती माया ।। १ ।।
उदै भईला सूर अस्त भईला चंदा । दुहु बिच कल्पना काल का फंदा ।
उदै ग्रह अस्त एक करि बासा । तब जानबा जोगींद्र जीवन आसा ।
बारह कला रबि सोलह कला ससी । चारि कला गुरुदेव निरंतर बसी ।। २।।
हीण पद सुराया लागा डंसा । तन का तेज ले उड़िया हंसा ।
हंस का तेज लै थिर रहे काया। काल का भेद कहौ गुर राया ।। ३।
द्वैपष छेदि एक वै रहणां । चंद सूर दोउ सम करि गहणां ।
ऊँच भै उपरे मध्य निरंतरै ता तलि भाठि जराई ।। ४।।
सीजि अमीरस कंचन हुआ। यहि बिधि पिंजरै बानबै सुआ।
उपजंत दीसंत निपजंत नाहीं। आबरण नास्ति संसार माहीं ।। ५।
बुझि लै सतगुर बुद्धि भेद सिद्ध संकेत । परचा जाणि लगावो हेत ।
उरम धूरम जोती झाला। नौ कोटि षिड़की पूर ले ताला।। ६ ।।
ताला न टूटै षिड़की न भाजै। पिंड पाडै तौ सतगुर लाजे ।
भरे सागर धुनि धूसर कुंची। तहाँ सकल विध है सोई सूची ।।७।।
इहि विधि जोगी अतीत होई। अमर पद ध्यावत बिरला कोई
सहज मरे अष्ट पग धरणां । ग्यांन खड्ग ले काल संहरणां ।। ८ ।।
अमर कोट काया एक ब्रह्म मध्ये । जीत ले जमपुरी राषि ले कंधे ।
आतमा झूझ जती गोरषनाथ किया। संसार बिणास्या आपण जिया ।। ९।।

राशियों का मासफल

शनिवार ०१-११-२०२५ से ३०-११-२०२५ रविवार तक

***डॉ0 दिग्विजय शुक्ल**

मेषः आप अपने में आत्म विश्वास बनाने का प्रयास करें। क्रोध की अधिकता से यथा सम्भव दूर रहें। आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। सन्तान की उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा। कार्मिक क्षेत्र में सफलता मिलेगी। दूरस्थ यात्रा का सुयोग बनेगा। प्रतियोगी परीक्षा में सफलता मिलेगी।

वृषभः आपके व्यापार में सुदृढ़ता आयेगी। कर्म क्षेत्र में बदलाव आयेगा। परिजनों का सहयोग मिलेगा। पारिवारिक मत भिन्नता दूर होगी। धर्म कार्य करने का अवसर बनेगा। आर्थिक विपन्नता दूर होगी। शिक्षा में सजग रहने की आवश्यकता है। अथक परिश्रम से लाभ मिलेगा।

मिथुनः पत्नी पक्ष में ध्यान देना जरूरी होगा। मन के अशान्त एवं उद्धिग्नता की स्थिति बनेगी। आत्म विश्वास पैदा करेंगे। व्यवसायिक क्षेत्र में सफलता मिलेगी। स्वजनों का सहयोग मिलेगा। धार्मिक कार्यों में अभिरुचि पैदा होगी। सन्तान की उन्नति का मार्ग बनेगा। आर्थिक बाधा दूर होगी।

कर्कः आपकी मानसिक परेशानी दूर होगी। आर्थिक स्रोत के साधन उत्पन्न होंगे। व्यावसायिक कार्यों में संयम रखना जरूरी है। संतान की समुन्नति के मार्ग प्रशस्त होंगे। आर्थिक सफलता का योग बनेगा। धर्म के प्रति जागरुकता आयेगी। परिवार में मधुर सबंध स्थापित होंगे।

सिंहः स्वजनों के सुखों में वृद्धि होगी। शैक्षिक कार्य में सफलता मिलेगी। धर्म के प्रति आस्था बढ़ेगी। आर्थिक लाभ के संसाधन उत्पन होंगे। मित्र गणों का सहयोग मिलेगा। सन्तानोत्पति का योग बनेगा। प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता मिलेगी। व्यवसाय में सफलता मिलेगी।

कन्याः आपको आत्म संयम रखने की आवश्यकता है। आर्थिक विपन्नता दूर होगी। परिवार में धार्मिक कृत्य करने का अवसर बनेगा। देष्ठाटन करने का योग बनेगा। व्यवसाय में विशेष लाभ मिलेगा। शिक्षा में सजग रहने की आवश्यकता है। कार्यों में जल्दबाजी करना अच्छा नहीं होगा।

तुलाः परिवार में सावधानियाँ जरूरी है। आर्थिक संकट दूर होगा । सन्तान के प्रति सतर्कता आवश्यक है। स्वजनो का साथ मिलेगा। व्यापार में सफलता मिलेगी। विद्या में सन्तान उत्कर्ष को प्राप्त करेगा। धार्मिक–कार्यों में विशेष अभिरुचि पैदा होगी। भ्रमण का संयोग बनेगा।

वृश्चिकः परिवार में शुभकार्य करने का सुयोग बनेगा। सामाजिक पदप्रतिष्ठा में वृद्धि होगी। व्यावसायिक कायों में सफलता मिलेगी। धर्म के प्रति जागरुकता आयेगी। प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता मिलेगी। जोखिम भरे कार्यों में सफलता मिलेगी। आर्थिक विपन्नता दूर होगी।

धनुः अपने मित्रगणों के साथ धार्मिक यात्रा करने का योग बनेगा। मानासिक परेशानियाँ दूर होंगी। अधिक क्रोधातुर हितकर सिद्ध नहीं होगा। व्यापार मे ध्यान देना होगा। आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। परिवार में प्रेम एवं सौहार्द पूर्ण योग बनेगा। सन्तान पक्ष से मजबूत होंगे।

मकरः परिवार में हर्षोल्लास की स्थिति बनेगी। वाणी में मधुरता आयेगी । शैक्षणिक कार्यों में विशेष ध्यान देना होगा। परिजनों की परेशानियां दूर होंगी। अपने सेहत पर ध्यान देना होगा। आर्थिक बाधा दूर होगी। सन्तान के समुन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा। धर्म में आस्था उत्पन्न होगी।

कुंभः आप वाणी पर अंकुश लगायें। प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता मिलेगे । व्यापार में कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। अधिक परिश्रम करने से थोड़ा फल की प्राप्ति होगी। परन्तु आर्थिक विपन्नता दूर होगी। सन्तान की समुन्नति का मार्ग बनेगा। शिक्षा में सजग रहने की आवश्यकता है।

मीनः आपको स्वास्थ्य के प्रति सजग रहने की आवश्यकता होगी। पारिवारिक सम्बन्धों में मधुरता आयेगी। आर्थिक स्थिति में सुधार आएगा । स्वजनों का सहयोग मिलेगा । व्यापार में चतुर्दिक लाभ होगा। कार्मिक क्षेत्र में सफलता मिलेगी। धार्मिक कार्य करने का सुयोग बनेगा।

■

योगिराज बाबा गम्भीरनाथ

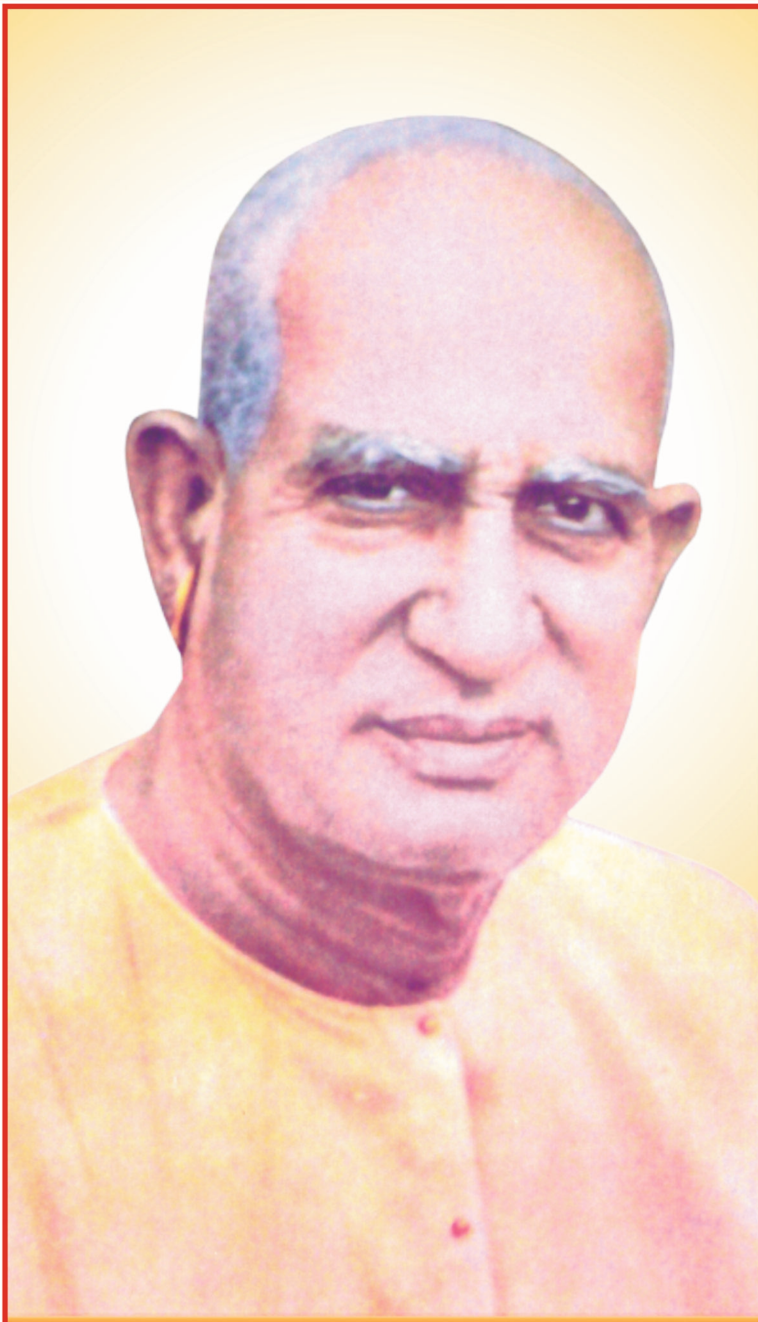

युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज

भारतीय तत्त्व चिन्तन और योग

*योगी आदित्यनाथ

योग का भारतीय तत्त्व-चिंतन और आध्यात्मिक साधना में अनादिकाल से गौरवशाली स्थान रहा है। अतीत के किसी अज्ञात काल से अब तक, संध्या-वंदना से लेकर समाधि तक, प्रवृत्ति मार्गियों से लेकर निवृत्ति मार्गियों तक, आस्तिकों-नास्तिकों से लेकर विदेशियों तक इसकी व्यापकता, इसकी महत्ता और उपयोगिता के अकाट्य प्रमाण हैं। अर्थात् योग आज की उपभोक्तावादी संस्कृति की देन नहीं, अपितु यह उतना ही प्राचीन हैं, जितनी भारतीय संस्कृति। इसका विकास उन महान् ऋषि-मुनियों, संतों और योगियों के अनुभवों और प्रयत्नों से हुआ, जिन्हें विभिन्न युगों में उत्पन्न करने का श्रेय हमारे देश भारत को है।

योग शब्द 'युज' धातु से बना है, जिसका अर्थ है जोड़ना, अर्थात् जो युक्त करे, मिलावे, उसे 'योग' कहते हैं। इस संबंध में 'योगसूत्र' के रचनाकार महर्षि पतंजलि ने 'योगः समाधिः' कहकर योग को समाधि के रूप में परिभाषित किया है, अर्थात् कामना, वासना, आसक्ति, संस्कार आदि सब प्रकार की आगंतुक मलिनता को दूर कर स्वरूप में प्रतिष्ठित होना - जीव का ब्रह्म होना - समाधि है। विभिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न साधनों द्वारा इस लक्ष्य अर्थात् 'समाधि' की स्थिति को प्राप्त किया है। भारतीय तत्त्व-चिंतकों, दार्शनिकों ने आत्मा की पवित्रता के उत्तम साधन के रूप में योग की महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है। हमें वेद, उपनिषद्, स्मृति पुराण, रामायण, महाभारत तथा लगभग सभी धार्मिक ग्रंथों के साथ-साथ हड़प्पा, मोहन जोदड़ो तथा मध्य प्रदेश के नर्मदा नदी के तट-पर प्राचीन माहिष्मती नगरी के प्राचीन सांस्कृतिक अवशेषों में योग-साधना के प्रमाण दृष्टिगोचर होते है

वेद विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं। ये मंत्रद्रष्टा ऋषियों के अंतर्ज्ञान के, आत्म-साक्षात्कार के प्रमाण हैं। वेद के प्रत्येक विभाग में योग को किसी-न-किसी रूप में मान्यता मिली है। वेद के तीन कांड हैं- १. कर्मकांड, २. ज्ञानकांड, ३. उपासनाकांड।

१. कर्मकांड के अनुसार - योगः कर्मसुकौशलम् अर्थात् कर्मों में कुशलता योग है।

२. ज्ञानकांड के अनुसार - 'संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो' अर्थात् जीवात्मा-परमात्मा का संयोग - एकीकरण - योग है।

गोरक्षपीठाधीश्वर एवं मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश

३. उपासना कांड के अनुसार – 'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है। समस्त उपनिषदों में किसी-न-किसी रूप में योग का वर्णन मिलता है। 'कठोपनिषद्' में इंद्रियों की स्थिर धारणा को योग कहा गया है। इसके अनुसार-

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रयधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥

जब पंच ज्ञानेंद्रियाँ मन सहित आत्मा में स्थिर होकर बैठती हैं, बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती, तब उस अवस्था को 'परमागति' कहते हैं। उसी स्थिर इंद्रिय-धारणा को 'योग' कहते हैं। उस अवस्था में साधक प्रमाद रहित होता है।

'अमृतनादोपनिषद्' तथा 'मैत्रायणी उपनिषद्' के अनुसार – प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि के रूप में षडङ्गयोग का वर्णन मिलता है-

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोथ धारणा।
तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्चते॥

ध्यानबिंदूपनिषद् के अनुसार –

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट्॥

योग कुंडल्युपनिषद् के अनुसार –

हेतुद्वयं हि चितस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्टे एकस्मिंस्तद्वावपि विनश्यतः॥

चित्त के दो हेतु है-वासना और प्राण। इनसे से किसी एक पर नियंत्रण होने से दोनों नियंत्रित हो जाते हैं।

योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार-मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान तथा योग दोनों आवश्यक हैं-

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षो वा भवति ध्रुवम् ।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ॥

योग के बिना ज्ञान या ध्रुव मोक्ष भला कैसे हो सकता है? उसी प्रकार ज्ञानहीन योग भी मोक्षकर्म में असमर्थ हैं। 'योगतत्त्वोपनिषद्' में योग के चार विभाग बताए हैं-

मंत्रयोगो लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगकः॥

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-

इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम्।
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्॥

यज्ञाचार, दम, अहिंसा, दान और स्वाध्याय, प्रभृति कर्मों में योग के द्वारा आत्मदर्शन ही परम धर्म है।

'रामायण' तथा 'महाभारत' जैसे ऐतिहासिक महाकाव्यों में भी योग के विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है। अध्यात्म रामायण में कहा गया है-

मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः पुरा मोक्षाप्तिसाधनाः।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वतः॥

'महाभारत' के जिस 'भीष्मपर्व' में गीता का उपदेश है, वहाँ योग के किसी एक स्वरूप को परिभाषित करना अत्यंत कठिन है। श्रीमद्‌भगवद् गीता अध्यात्मशास्त्र और योगशास्त्र का एक अपूर्व ग्रंथ है। वहाँ प्रत्येक अध्याय ही अपने आप में एक योग है। फिर भी 'गीता' में योग के तीन विभाग मुख्य हैं-

क. 'समत्वं योग उच्यते' अर्थात् सुख-दुःख आदि द्वंद्वों के बीच चित्त या मन का समान बने रहना;

ख. तत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया अर्थात् चित्त की स्थिरता,

ग. 'पश्य मे योगमैश्वर्यम्' अर्थात् संयमन सामर्थ्य, प्रभाव।

'गीता' में 'योग' शब्द का अर्थ उपयुक्त तीनों में से एक की मुख्यता तथा शेष दो अर्थों की गौणता है। 'योगवासिष्ठ', जो आध्यात्मिक ग्रंथों में उच्च कोटि का ग्रंथ है, में संसार सागर से पार होने की युक्ति को ही योग कहा गया है। इसमें योग की तीन विधियाँ बताई गई हैं- १. एक तत्त्व की दृढ़ भावना, २. मन की शांति और ३. प्राणों के स्पंदन का निरोध।

इन तीनों में किसी एक की सिद्धि होने पर तीनों सिद्ध हो जाते हैं।

तंत्र में साधना के दो मार्ग बताए गए हैं-

१. भावना द्वारा, २. कुल-कुंडलिनी के जागरण द्वारा। 'कौल-साधना' में कहा है-

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलाकुलस्य संबंधः कौलमित्यभिधीयते ॥

'कुल' शब्द शक्ति का वाचक है और 'अकुल' शब्द से 'शिव' का बोधक होता है।

‘कुल’ और ‘अकुल’ के संबंध को ‘कौल’ अथवा ‘ब्रह्मज्ञान’ कहते हैं।

योग की इन विशिष्टताओं का वर्णन उपनिषदोत्तर कालीन नास्तिक एवं आस्तिक दर्शन-संप्रदायों के अंदर भी देखने को मिलता है। इन दार्शनिक संप्रदायों में तात्त्विक और वैचारिक रूप से चाहे जो भी मतभेद रहे हों, लेकिन उनके आचार-शास्त्रों में योगपरक जीवन-पद्धति की स्वीकृति समान रूप से विद्यमान मिलती है। नास्तिक चार्वाक ने जहाँ पौराणिक कर्मकांड, वेद और तत्त्व-मीमांसा को आत्मवंचना मानकर उपहास किया है, वहीं योग साधना की क्रियाओं का अगर समर्थन नहीं तो कहीं परिहास भी नहीं किया है।

जैन दर्शन में योग को सम्यक् जीवन का आधार मानकर सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र को मोक्ष के मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया है। बौद्ध दर्शन में क्षणिक और दु:खमय संसार से मुक्त हो जाने के प्रयास को योग-जीवन का आरंभ माना गया है, जिसकी चरम परिणति ‘समाधि’ में होती है।

अत: प्रज्ञा, शील और समाधि को बौद्धों ने योग का परिभाषित स्वरूप माना है। न्याय-दर्शन के अनुसार आत्मायुक्त शरीर में दु:ख का आत्यंतिक अभाव ही योग की पराकाष्ठा है।

वैशेषिक-दर्शन के अनुसार- मन के आत्मा मात्र में स्थित हो जाने पर मन कर्म के अभाव से आत्मायुक्त शरीर में दु:खानुभव का अभाव ही आत्मा का परमात्मा से संयोग अर्थात् योग है।

सांख्य-दर्शन में पुरुष और प्रकृति की पृथक्ता के ज्ञान को योग कहा गया है। जब पुरुष त्रिगुणात्मिका प्रकृति से ऊपर उठकर अर्थात् जब जीवात्मा मल, विक्षेप तथा आवरण को दूर कर सच्चिदानंद परमात्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है, तब इसे सनातनी ‘ब्राह्मी स्थिति’ कहते हैं। जैनी इसे ‘केवली’ और बौद्ध ‘निर्वाण’ कहते हैं।

पतंजलि का दर्शन-संप्रदाय तो वस्तुत: योगदर्शन और साधना का ही एक सुविचारित, समन्वित और परिनिष्ठित रूप है। महर्षि पतंजलि ने भारतीय परंपरा में प्रवाहमान योग की संस्कृति को एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप प्रदान किया। महर्षि पतंजलि ने ‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:’ अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है, ऐसा अपने दर्शन में प्रतिपादित किया है। चित्त की पाँच अवस्थाएँ होती हैं-

१. क्षिप्तावस्था, २. मूढ़ावस्था, ३. विक्षिप्तावस्था, ४. एकाग्रता, ५. निरुद्धता।

निरुद्धता को प्राप्त करना ही योग का लक्ष्य है। चित्त की विभिन्न अवस्थाओं को रोकने के लिए महर्षि पतंजलि ने तीन तरह के साधन भी बतलाए हैं-

१. उत्तम अधिकारी के लिए उत्तम साधन, जिसमें अभ्यास, वैराग्य, ईश्वर प्रणिधान आदि हैं। २. मध्यम अधिकारी के लिए मध्यम साधन, जिसमें तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि हैं तथा ३. अधम अधिकारी के लिए अधम साधन, जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये आठ अंग हैं–जिन्हें 'अष्टाङ्ग–योग' के नाम से जाना जाता है।

'पूर्वमीमांसा' में आचार्य जैमिनि ने वेदविहित कर्मों के आधार पर मोक्ष की प्राप्ति पर बल दिया है। इसमें योग साधना का प्रमुख आधार कर्म है। 'उत्तरमीमांसा' में आचार्य शंकर ने ज्ञान को ही योग कहा है। सांख्य जहाँ पुरुष और प्रकृति के वियोग (पृथक्ता के ज्ञान) को योग कहता है, वहीं शांकर वेदांत में आत्मा–परमात्मा के संयोग को योग माना गया है। वस्तुतः योग साधना के द्वारा हम अपनी अंतः और बाह्य प्रकृति पर नियंत्रण स्थापित करके दिव्यता को प्राप्त कर अपने चरम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त कर सकते हैं। हमारे तमाम ऋषि–मुनियों, संतों, योगियों के इतिहास योग–शक्ति के अद्‌भुत और चमत्कारिक प्रयोगों से भरे पड़े हैं, जिनके बल पर वे त्रिकालदर्शी और अष्टसिद्धि नवनिधि संपन्न विभूति के रूप में विख्यात हुए। योग–साधना के द्वारा ही आज मानव समाज को मानसिक–शारीरिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से समुन्नत और स्वस्थ बनाया जा सकता है। इस संबंध में श्रुति भी कहती है–

न तस्य रोगो न जरा न मत्युः।
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद् २/१२)

योगाग्निमय शरीर जिसको प्राप्त होता है, उसे कोई रोग नहीं होता, बुढ़ापा नहीं आता और मृत्यु भी नहीं होती।

योग–साधना की मुख्यतः अधोलिखित चार प्रसिद्ध शैलियाँ हैं–

१. मंत्रयोग, २. हठयोग, ३. लययोग और ४. राजयोग। योग साधना की उपर्युक्त शैलियों का मूल अष्टाङ्ग–योग है।

हठयोग

*सुभाष विद्यालंकार

भारत के प्राचीन साहित्य में 'योग' शब्द अनेक प्रकार के व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। फिर भी इसका जो आध्यात्मिक अर्थ है, उसमें योग साधना की विभिन्न विधियां होने पर भी मूल रूप से कुछ अंश में सामञ्जस्य पाया जाता है। जीवात्मा और परमात्मा के संयोग को योग कहा जाय, अथवा प्राण और अपान के संयोग, चन्द्र और सूर्य के मिलन, शिव और शक्ति की समरसता, चित्तवृत्ति का निरोध अथवा अन्य किसी भी प्रकार से योग का लक्षण निश्चित किया जाय, मूल में विशेष अन्तर नहीं है।

महायोग और पूर्ण योग

योग शिखा उपनिषद् में कहा गया है कि स्वाभाविक योग एक ही है, अनेक नहीं। वही महायोग के नाम से साधकों में प्रसिद्ध है। अवस्था भेद के अनुसार महायोग ही हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग अथवा राजयोग के रूप में प्रकाशित होता है।

मन्त्रो लयो हठो राजयोगोऽन्तर्भूमिकाः क्रमात् ॥ योगशि० 129
एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोऽभिधीयते ॥ योगशि० 130

हठयोग

हठयोग के आदि आचार्य कौन थे यह बतलाना तो बहुत कठिन है। भारत के आचार्यों का यह सिद्धान्त है कि सभी शास्त्रों की प्रथम प्रवृत्ति परमेश्वर से ही होती है। इसलिये हठयोग भी ईश्वरप्रोक्त कहा जाता है। हठयोगियों के अनुसार आदिनाथ श्री शिवजी ही हठयोग के प्रवर्त्तक हैं। जिस विचित्र उपाय से मत्स्येन्द्र नाथ ने इस विद्या को प्राप्त किया था, उसका ऐतिहासिक मूल्य कितना है यह कहा नहीं जा सकता। मत्स्येन्द्रनाथ की तरह गोरक्षनाथ, चर्पटि, जलन्धर, कनेड़ि, चतुरंगी. घेरण्ड, और विचारनाथ आदि नाथ सम्प्रदाय के आचार्यों ने संसार में हठयोग का प्रचार किया था। गोरक्ष शतक, गोरक्ष संहिता, सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति, सिद्ध-सिद्धान्त संग्रह, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह, अमनस्क योग, योग बीज, हठयोग प्रदीपिका, हठतन्त्र कौमुदी, घेरण्ड संहिता, निरञ्जन पुराण इत्यादि बहुत से साम्प्रदायिक ग्रन्थ आज भी मिलते हैं। योग से सम्बद्ध अनेक उपनिषदों में भी हठयोग की विस्तृत जानकारी मिलती है।

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ से पहले भी हठयोग का प्रचलन था, इसमें कोई सन्देह नहीं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में मार्कण्डेय मुनि इस योग के साधक थे।

द्विधा हठः स्यादेकस्तु गोरक्षादि सुसाधकैः ।
अन्यो मृकण्डपुत्राद्यैः साधितो हठसंज्ञकः ॥

गोरक्षनाथ के हठयोग में योग के छह अंग हैं। इनमें यम और नियम नहीं हैं। परन्तु मार्कण्डेय मुनि अष्टाङ्ग हठयोग के पक्षपाती थे। योग तत्त्व उपनिषद् में हठयोग के आठ अंग बताये गये हैं।

इन दोनों प्रकार के योगों का उद्देश्य राजयोग या मोक्ष प्राप्ति है। पातञ्जल योगदर्शन में असम्प्रज्ञात समाधि के नाम से इसी का वर्णन किया गया है। हठयोग की नियमित साधना से राजयोग की सिद्धि होती है। इसीलिये आचार्य हठयोग को राजयोग की सीढ़ी बतलाते हैं। इस राजयोग के प्रभाव से ही साधनाशील जीव, काल के बन्धन से छुटकारा पा जाता है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय तत्त्व, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरञ्जन, जीवन्मुक्ति, सहजावस्था और तुरीयावस्था ये सब राजयोग के ही नाम हैं।

योगी स्वात्माराम ने कहा है कि कुम्भक प्राणायाम द्वारा प्राण की गति बन्द (रुद्ध) हो जाने पर चित्त, निरालम्ब हो जाता है। ब्रह्मानन्द ने भी हठयोग प्रदीपिका की ज्योत्स्ना टीका में स्पष्ट लिखा है कि जिस समय सम्प्रज्ञात समाधि के बाद ब्रह्माकार स्थिति का उदय होता है उस समय पर वैराग्य धारण करके चित्त को भलीभांति निरुद्ध करना आवश्यक है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हठयोग से स्वभावतः राजयोग का विकास होता है।

देह शुद्धि हठयोग के मुख्य उद्देश्यों में से है। योगियों की पारिभाषिक भाषा में देहशुद्धि घटशुद्धि कही जाती है। हठयोग में नेति, धौति, वस्ति, त्राटक, न्यौली और कपाल भाति इन षट् (छह) कर्मों (क्रियाओं) से शरीर की शुद्धि की जाती है।

धौति क्रिया

धौति से शरीर को पूरी तरह नीरोग और स्वस्थ बनाया जा सकता है। वायु-धौति, अग्नि-धौति, जल-धौति और वस्त्र-धौति के अभ्यास सामान्य रूप से प्रचलित हैं। इनमें वस्त्र धौति अधिक प्रचलित है। इससे पेट और और वक्षः स्थल स्वच्छ रहते हैं।

नेति क्रिया

नाक के द्वारा नेति क्रिया की जाती है। नेति से कण्ठ और मस्तक तथा नेत्र निर्मल रहते है। जलनेति, सूत्रनेति और घृत-नेति का अभ्यास प्रचलित है।

वस्ति क्रिया

योगी, जल–वस्ति (एनीमा) और स्थल वस्ति के द्वारा पाक स्थली और आंतों में जमा दूषित मल निकाल देते हैं।

न्यौली क्रिया

न्यौली में पेट की आंतों को दांये से बांये और बांये से दांये घुमा कर आंतों को और पाचन यन्त्रों को सबल बनाया जाता है।

त्राटक

उदय होते हुए सूर्य को और चन्द्रमा को एकटक देखते रहने से या कुछ दूर रखे दीपक पर दृष्टि स्थिर रखने से अथवा दर्पण में अपनी आंखों को पलक झपके बिना देखते रहने से त्राटक का अभ्यास किया जाता है। त्राटक के अभ्यास से मन की एकाग्रता और धारणा शक्ति बढ़ती है तथा आंखों की ज्योति बढ़ती है।

कपाल भाति

कपाल भाति क्रिया में नाक से श्वास–प्रश्वास तेजी के साथ और बिना रुके किया जाता है। श्वास–प्रश्वास करते हुए पेट भी अन्दर–बाहर होता रहता है। इस क्रिया से नाक, फेफड़ों और गले में जमा कफ निकल जाता है। मस्तक और मुख पर कान्ति छा जाती है।

षट्कर्म की इन क्रियाओं के अतिरिक्त साधक निम्नलिखित क्रियाएं भी शरीर शुद्धि के लिये करते हैं–

जलपान

सवेरे सोकर उठने के बाद मुहं धोकर काफी मात्रा में पानी पीना। प्यास लगने पर दोपहर का भोजन करने से कुछ पहले पानी पीना तथा खाना खाने के कुछ देर बाद पानी पीना और रात को भी सोने से पहले पानी पीना ही जलपान है। इससे शरीर नीरोग रहता है।

नासा पान

सवेरे बड़े बर्तन में पानी भरकर नाक से पानी पीना ही नासा पान है। इससे शरीर के अन्दर रोगों के जीवाणु टिक नहीं सकते और शरीर नीरोग रहता है।

आतपस्नान

धूप में खुले शरीर कुछ समय तक प्रतिदिन बैठने से चर्म रोग और कुष्ठ जैसे भयंकर रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

आसन

योगाम्यास और रोग नष्ट करने के लिये कई प्रकार के आसन हैं। योगाभ्यास के लिये चौरासी या बत्तीस आसन उपयोगी हैं। इनमें से पद्मासन और सिद्धासन सहज योगाभ्यास के लिये उपयोगी हैं।

धारणा, ध्यान और समाधि के लिये सिद्धासन, पद्मासन या अर्ध पद्मासन ही उचित हैं।

मुद्रा

मुद्राएं एक प्रकार से आसनों के ही भेद हैं। शरीर के स्नायु–तन्तुओं और मांसपेशियों को सशक्त बनाना आसनों का लक्ष्य है और अन्तः स्रावी तथा बहिः स्रावी ग्रन्थियों को सक्रिय और सबल रखना मुद्राओं का काम है। मुद्राएं भी अनेक प्रकार की हैं। मुद्राओं से शरीर, साधना के लिये उपयुक्त बन जाता है।

प्राणायाम

हठयोग के अनुसार प्राणायाम के तीन अंग हैं– पूरक, कुम्भक और रेचक। प्राण शक्ति को कैवल्य लाभ की साधना में उपयोगी बनाना प्राणायाम का उद्देश्य है। प्राणशक्ति की वृद्धि और मन के नियन्त्रण का भी प्राणायाम या कुम्भक योग से सम्बन्ध है। प्राणायाम का अच्छा अभ्यास होने से शरीर रोगमुक्त रहता है।

प्राणायाम के लिये श्वास और प्रश्वास का स्वाभाविक परिमाण जानना आवश्यक है। भीतर गये हुए वायु को रोकने का भी परिमाण जानना जरूरी है। अस्वाभाविक रूप से पूरक, रेचक या कुम्भक करने से प्राण–शक्ति की वृद्धि के स्थान पर प्राण के नाश की ही आशंका रहती है। शरीर से बारह अंगुलि तक श्वास बाहर जाय तो यह स्वाभाविक है। चलते समय सोलह अंगुलि तक, भोजन के समय बीस अंगुलि तक, दौड़ते समय चौबीस अंगुलि तक और सोते समय तीस अंगुलि तक प्राणवायु की स्वाभाविक गति है। उसमें गड़बड़ी होने से आयु घटती है।

शुरू में योगाभ्यास के समय प्रातः स्नान, उपवास, अतिरिक्त शारीरिक परिश्रम, एक समय भोजन और कम भोजन योगियों के लिये मना है। लेकिन ध्यान और समाधि सीखने के समय उपरोक्त नियमों पर चला जा सकता है। शुद्धचित्त और एक समय भोजन करके तथा कोई–कोई योगी केवल पानी मिला दूध पीकर भी बल प्राप्त करते हैं। योगी के लिये सब प्रकार के नशे बिल्कुल मना हैं। योगियों के लिये मांसाहार भी पूरी तरह मना है।

श्वास और दीर्घजीवन

जिन प्राणियों की श्वास की संख्या जितनी कम और कुछ लम्बी होती है वे प्राणी उतने ही अधिक समय तक जीवित रहते हैं और जिन प्राणियों के श्वास की संख्या या गति जितनी अधिक होती है वे प्राणी उतने ही कम समय तक जीवित रहते हैं। योगी जानते हैं कि मनुष्य यदि अपने श्वास को कम कर सके तो वह अपनी निश्चित आयु से भी अधिक समय तक जीवित रह सकता है।

भूख पर विजय

भूख मनुष्यों की परम मित्र है। लेकिन भूख को नियन्त्रित नहीं रखने से शत्रु बन जाती है। योगी को और योग के विद्यार्थी को भूख पर नियन्त्रण करना ही होगा। भूख एक तरह की इच्छा है। शरीर द्वारा तरह-तरह के काम करने और चलने-फिरने, बोलने आदि से शरीर की शक्ति नष्ट होती है। इस खोई हुई शक्ति को भोजन के द्वारा पूरा किया जाता है। शरीर की इस शक्ति को फिर पाये बिना शरीर यातना भोगता है और शरीर से प्राण निकल जाता है। लेकिन देखा जाता है कि बहुत बीमार व्यक्ति भोजन के बिना एक महीने से भी अधिक समय तक रह जाते हैं। अत्यधिक शोकग्रस्त व्यक्ति को भूख लगती भी नहीं। बहुत से पागल भोजन के बिना कई दिन बिता देते हैं। खाने की वस्तुओं से हमें जो प्राण-वायु मिलती है और जिस के द्वारा हम जीवित रहते हैं वह प्राण-वायु; मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश इन पांच महाभूतों से मिल सकती है। योगी, प्राणायाम के अभ्यास से भी शरीर की नष्ट हुई शक्ति को पूरा कर सकते हैं। आमतौर पर मनुष्य जितना भोजन करते हैं हमारा पाचन तन्त्र (हाजमा) कमजोर होने के कारण इस भोजन से पूरी प्राण-शक्ति लिये बिना भोजन को छोड़ देता है। लेकिन प्राणायाम से शरीर और पाचन अंगों के सशक्त होने पर योगी पृथ्वी, जल आदि पंचभूतों से भी अपनी जरूरत के अनुसार प्राण-वायु लेकर जीवित रह सकता है। कम परिश्रम करने वाले व्यक्ति कम खाते हैं और अधिक परिश्रम करने वाले अधिक भोजन करते हैं।

अन्त: करण सात्विक आनन्द से, हृदय के तृप्त होने से, मन में सन्तोष होने से और शरीर निश्चल रहने से देह की शक्ति नष्ट नहीं होती है। लम्बे समय तक चिन्तन करते रहने से भी भूख नहीं लगती। मन चिन्तित रहने से शरीर की शक्ति अधिक नष्ट होती है और गम्भीर आनन्दपूर्ण चिन्तन से शरीर की शक्ति बढ़ती है। आनन्द स्वरूप

परमात्मा की उपासना में नियमित रूप से मन लगाये रखने से शरीर और मन, शक्ति नाश से बचकर सदा खिले कमल की तरह रहते हैं।

योग साधना का स्थान और आसन

योगसाधना के लिये कुटिया, वन, पर्वत की गुफा या किसी मठ में ही रहना आवश्यक नहीं है। ये सब स्थान अनुकूल हैं, लेकिन मन के अनुकूल और उपद्रव रहित स्थान में भी योगाभ्यास किया जा सकता है। कुशा के आसन के ऊपर कपड़ा बिछाकर सिद्धासन या पद्मासन लगाकर अभ्यास करना चाहिये। केवल मिट्टी पर कभी योगासन नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि पृथ्वी; प्रतिक्षण शरीर की शक्ति को खींच रही है। गर्दन, मस्तक और मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) को सीधा रखकर बैठे हुए धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास प्रतिदिन निश्चित समय पर ही करना चाहिये।

अष्टाङ्ग योग

अष्टाङ्ग योग के पहिले पांच अंग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार–बहिरंग साधना हैं और शेष तीन धारणा, ध्यान, समाधि, अन्तरंग साधना हैं। बहिरंग साधना के द्वारा चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त जितना अधिक निर्मल होगा, सिद्धि उतनी ही जल्दी होगी। मलिन चित्त से ध्यान होना असम्भव है। चित्त में रजो मल रहने से चित्त चंचल रहता है और तमो मल से ध्यान करते हुए नींद आती है।

अन्तरंग साधना का पहला अंग धारणा है। किसी लक्ष्य या स्थान पर चित्त को लगाये रखना धारणा कहलाती है। अधिक समय की स्थायी धारणा का नाम ध्यान है और ध्यान के गम्भीर तथा प्रगाढ़ (गहरा) होने का नाम समाधि है।

जीवन और दर्शन

*अनुपम वत्स

दर्शनशास्त्र का महत्व जीवन में अत्यन्त गहरा है। संस्कृत में 'दर्शन' का अर्थ है सत्य का साक्षात्कार या तत्त्व का बोध। यह केवल ग्रन्थों में पढ़ने की वस्तु नहीं है, बल्कि जीवन को सही दिशा देने वाला मार्गदर्शक है। आइए विस्तार से समझते हैं।

१. दर्शनशास्त्र की परिभाषा

दर्शनशास्त्र मनुष्य, जगत् और परमात्मा के संबंध का विवेचन करता है।

इसका उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि मोक्ष या जीवन-मुक्ति है।

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत ये छः दर्शन मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं।

२. जीवन में दर्शनशास्त्र का महत्व

(क) सत्य एवं ज्ञान की प्राप्ति

दर्शन हमें यह सिखाता है कि सत्य क्या है और मिथ्या क्या है।

उदाहरण वेदांत कहता है "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या", इससे हमें भौतिक मोह से उबरने की प्रेरणा मिलती है।

(ख) नैतिक जीवन का आधार

दर्शन हमें बताता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं।

न्यायदर्शन में प्रमाण-शुद्ध विचार पर बल है।

योगदर्शन आत्मसंयम, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि की शिक्षा देता है।

(ग) दुःख-निवारण और शान्ति

दर्शनशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है दुःखनिवृत्ति और आत्मसुख।

सांख्य कहता है कि दुःख का कारण अविद्या और पुरुष-प्रकृति का संयोग है।

योग कहता है कि चित्तवृत्ति-निरोध से शाश्वत शान्ति मिलती है।

(घ) व्यावहारिक जीवन में संतुलन

दर्शन हमें सहनशीलता, विवेक, आत्म-नियंत्रण और समत्व सिखाता है।

इससे मनुष्य लोभ, क्रोध, मोह से बचकर कर्तव्य-निष्ठा से जीवन जीता है।

(ङ) परम लक्ष्य - मोक्ष

भारतीय दर्शन मानता है कि मनुष्य का परम पुरुषार्थ मोक्ष है।

दर्शन शास्त्र यह मार्ग बताता है कि जन्म-मरण रूपी चक्र से मुक्त होकर आत्मा परमात्मा में लीन हो सकती है।

३. दार्शनिक शिक्षा के उदाहरण

गीता में कृष्ण ने कहा-

"समत्वं योग उच्यते" सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय में समान रहना ही योग है।

कठोपनिषद् में रथरूपक द्वारा कहा गया कि इन्द्रियों पर संयम रखकर आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

४. निष्कर्ष

दर्शनशास्त्र केवल सैद्धान्तिक चर्चा नहीं है, यह-

जीवन को दिशा देने वाला मार्गदर्शन है।

नैतिकता और शान्ति का स्रोत है।

मानवता और आत्मोत्कर्ष की प्रेरणा है।

मोक्ष और परम सत्य की ओर ले जाने वाला साधन है।

इसलिए जीवन में दर्शनशास्त्र का महत्व अत्यधिक है, क्योंकि यह हमें केवल जीना ही नहीं सिखाता, बल्कि अच्छा और सार्थक जीवन जीना सिखाता है।

■

आधुनिक युग में संस्कृत की उपादेयता

***ब्रह्मदत्त द्विवेदी**

भारत वर्ष प्राचीन काल से ही अपनी बौद्धिक सम्पदा के लिए जाना जाता है। यह जगत् गुरु के पद पर आसीन रहा है। इसका प्रमुख कारण भारत की संस्कृति और संस्कार थे। जो संस्कृतभाषा में आज भी जीवित है।

सत्याहिंसा गुणै श्रेष्ठा, विश्वबन्धुत्वशिक्षिका।
विश्वशान्ति सुखाधात्री भारतीया हि संस्कृतिः ॥

संस्कृत शब्द 'सम' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से 'क्त' प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ परिष्कृत, परिमार्जित, अलंकारित तथा शुद्ध होता है। शब्द के अर्थ से ही यह सिद्ध होता है कि सर्वश्रेष्ठ भाषा संस्कृत ही है। जिसे देव भाषा भी कहा जाता है। किन्तु आज की आधुनिकता में मानव अपनी प्राचीन संस्कृति, संस्कार तथा संस्कृत को भूलता जा रहा है। आज के आधुनिक विज्ञान की मृगमरीचिका में खो जाने के कारण प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित विश्राम को किया जा रहा है, जो अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। तथापि हमारे संस्कृत साहित्य में वर्णित विज्ञान आज भी महत्त्वपूर्ण हैं।

संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम अनुकरणीय पूज्य एव प्रतिष्ठित 'वेद' हैं। जिसमें न केवल भारत का अपितु विश्व का सर्वश्रेष्ठ विज्ञान, प्रबन्ध प्रशासकीय शासन व्यवस्था, गणित, खगोल विद्या रसायनशास्त्र धनुर्वेद (शस्त्रशास्त्र) की जानकारी प्राप्त होती है। यजुर्वेद में वर्णित अग्नि स्तुति के सम्बन्ध में दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत अर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त, आदि संख्याओं का वर्णन मिलता है–

'इमा' में अग्नइष्ट का घेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुते चायुते च नियुते च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च चान्तश्चपरार्धश्चौता'। (यजुर्वेद १७.२)

गुप्तकाल के समय में रचित आर्यभट्ट की रचना 'आर्यभट्टीयम' में अंकगणित, ज्यामिति, बीजगणित तथा त्रिकोणमिति के सिद्धान्त दिये गये हैं। उनका वृत्त के क्षेत्रफल सम्बन्धी एक सिद्धान्त है कि यह परिधि तथा व्यास के आधे का गुणनफल (१/२ परिधि १/२ व्यास) होता है तथा त्रिभुज के क्षेत्रफल के विषय में यह आधार

तथा समान कोटि के गुणनफल का आधा है। कहा गया है कि–

वृत्त फलं समपरिणाहस्यार्थ विष्क्रम्भार्धहत मेव।
त्रिभुजस्य फलं शरीर समदल कोटी भुजार्ध सवर्गः ॥

इसके अतिरिक्त 'शुल्व' सूत्र में वर्णित अनेक प्रकार की यज्ञवेदियों के निर्माण में मापने हेतु प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों का वर्णन मिलता है। भारतीय गणितज्ञों ने हि खोज कि शून्य (०) वस्तुतः अनन्त है। जो कभी भी विभाजित नहीं होता इसे किसी भी राशि में जोड़ने अथवा घटाने में राशि के चिह्न में कोई परिवर्तन नहीं होता।

'खयोगे रियोगे-धनर्ण तथैवच्युत शून्य तस्त द्विपर्यासमेति'।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि जिस गणित ज्ञान को लेकर आधुनिक गणितज्ञ तथा पाश्चात्य विद्वान अपने आपको गौरवान्वित करते हैं वह ज्ञान प्राचीनकाल से संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित है।

गणित की ही तरह हमारे संस्कृत साहित्य में भौतिक विज्ञान तथा रसायन विज्ञान का भी वर्णन मिलता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान का सर्वप्रमुख सिद्धान्त 'परमाणुवाद' है। जिसका वर्णन हमारे संस्कृत साहित्य में छटीं शताब्दी ईसा पूर्व **'वैशेषिक दर्शन'** के प्रवर्तक **'महर्षि कणाद'** ने अपने दर्शन में किया है। उनका कहना था कि परमाणुओं के संयोग से ही भौतिक सृष्टि का निर्माण होता है।

इसी प्रकार जिस गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को न्यूटन ने कुछ शताब्दी पूर्व सिद्ध किया है। उसी सिद्धान्त को आचार्य 'भास्कर' ने न्युटन से कई सौ वर्ष पूर्व इस सिद्धान्त का निरूपण कर दिया था–

आकृष्ट शक्तिश्च मही तथा यत्
स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखंस्वशक्तया
आकृष्यते तत् पततीव भाति
समे समन्तात् क्वं पतत्वियं खे॥ (भुवनकोश)

रसायनशास्त्र का प्रमाण तो मेहरौली का लौहस्तम्भ ही दर्शाता है, जिसमें किया गया रसायन लेप हजारों वर्षों से धूप, वर्षा, शीत की सहन करते हुए आज भी पूर्णतः स्थायी तथा चमकदार है। पाश्चात्य विद्वान 'अल्तेकर' ने इस स्तम्भ के बारे में लिखा है–

‘The forgingof so large on iron column was out of the reach of human thought elsewhere not only at that time but for many centuries after words as well.’ (अल्तेकर)

संस्कृतशास्त्रों में रसायन विद्या को पराविद्या तथा भोग एवं मुक्ति को प्रदान करने वाली विद्या कहा गया है –

रसाविद्या पराविद्या त्रैलोक्येऽपि तु दुर्लभाः।
भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात् तस्माद्‍विया गुणान्वितैः ॥

(रसागंव)

चिकित्सा के क्षेत्र में भी संस्कृत भाषा का अत्यन्त योगदान है। इस भाषा में रचित-चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता आदि चिकित्सा, आदिशास्त्रों में ‘शल्य’ चिकित्सा प्रणाली का वर्णन मिलता है। मानवीय चिकित्सा ही नहीं अपितु प्राचीन काल में पशु चिकित्सा की भी जानकारी प्राप्त होती है। यह विद्या संस्कृत भाषा में रचित-पालकाव्यकृत, हस्त्यायुर्वेद में वर्णित है। देवासुर संग्राम प्रसङ्ग से ज्ञात होता है कि असुर गुरु ‘शुक्राचार’ ने ‘मृतसंजीविनी विद्या’ (औषधि) से मृत असुरों को भी जीवित कर दिया था। अश्विनी कुमारों ने तो ‘महर्षि च्यवन’ की आँखों को अपने औषधि ज्ञान से पुनः दृष्टि प्रदान की थी। अथर्ववेद में वर्णित सिद्धान्त है कि विष की औषधि विष ही होती है– ‘विषस्य विषमौषधम्’। (अथर्व. ७.८८.१)

‘चरकसंहिता’ को अल्वरूनी ने औषधिशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ बताया है। इसमें शरीर रचना गर्भ में स्थिति शिशु का जन्म से लेकर उत्पन्न रोगों का मृत्युपर्यन्त तक के इलाज का सम्पूर्ण वर्णन है।

आधुनिक युग में तकनीकि या प्रौद्यागिकी का विकास निरन्तर प्रगति कर रहा है। परन्तु यह ज्ञातव्य होना चाहिए कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित प्रौद्यौगिकी का विकास गुप्तोत्तर काल में भी हुआ यद्यपि शिल्प विज्ञान तथा शिल्पकारिता में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ।

कृषि की उन्नति तथा व्यापक आधार प्राप्त कर लेने के फलस्वरूप सिंचाई तकनीक उन्नत हो गयी। ‘कल्हण’ द्वारा रचित पुस्तक राजतरंगिणी में खूया नामक इंजीनियर का उल्लेख है। जिसने झेलम तट पर बौध बनवाया तथा नहरें निकलवायी थीं। विविध प्रकार के उद्योग धन्धे विकसित अवस्था में थे। शिल्पकारों तथा व्यापारियों की अनेक श्रेणियाँ थीं। ‘साहित्यिक तथा पुरातात्विक’ दोनों ही लौह तकनीक के

सुविकसित होने के प्रमाण देते हैं। तेरहवीं शती के संग्रह 'रसरत्न समुच्चय' में लोहे की कई किस्मों का उल्लेख किया है।

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ 'अपराजितपृच्छा' से पता चलता है कि प्रत्येक नगर में काम करने वाले दक्ष शिल्पी निवास करते थे।

अतः हमे इन सब लिखी हुयी प्राचीन ग्रन्थों में जो बातें हैं। इनसे हमें ज्ञात होता है कि संस्कृत एक ऐसी भाषा है, जिसकी जानकारी प्राप्त करने के बाद हम अनेक क्षेत्रों में शोध कर सकते हैं। हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य में हमारे जीवन में उपयोग आने वाली वस्तुओं का संस्कारित विवरण प्रस्तुत है, क्योंकि हमारे सम्पूर्ण ग्रन्थ-वेद, पुराण, उपनिषद्, आरण्यक आदि ग्रन्थों में सब कुछ उपलब्ध है।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य में आधुनिक युग में उपयोग होने वाली समस्त वस्तुओं की जानकारी अक्षरसः उपलब्ध है। अगर आवश्यकता है तो अध्ययन करने की और उन पर शोध करने की, प्राचीन पाण्डुलिपियाँ इसका अभी भी प्रत्यक्ष प्रमाण है।

आज हम लोगों को आधुनिकता को न स्वीकार कर बल्कि आधुनिकता में प्राचीन संस्कृत साहित्य को स्वीकारने की आवश्यकता है, क्योंकि कुछ क्षेत्रों में भारतीय संस्कृत साहित्य में निहित ज्ञान-विज्ञान को विदेशियों ने भी ग्रहण किया तथा उसकी प्रशंसा की है।

॥ जयतु संस्कृतम्-जयतु भारतम् ।

मूल्य-शिक्षा की प्राचीन अवधारणाएँ

***विजय प्रकाश मिश्र**

अवधारणा को हम सम्प्रत्यय या किसी आकृति मूल (झाँकी) को कहते हैं। किसी को देखकर समझकर हम उसके विषय में या आकृति के रूप में जो चित्र मन में बना लेते हैं, वही अवधारणा है।

मूल्य शिक्षा की अवधारणा आधुनिक एवं व्यापक है। परम्परागत रूप में धार्मिक शिक्षा नैतिक शिक्षा आदि जो प्रचलित है, उनसे यह भिन्न हैं इसका तात्पर्य उस शिक्षा से है जिसमें हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अध्यात्मिक मूल्य समाहित है।

'Value'शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Value' शब्द से मानी जाती है जो किसी वस्तु या उपयोगिता को व्यक्त करता है। हिन्दी में 'Value' को मूल्य कहा जाता है परन्तु संस्कृत में इसे पुरुषार्थ की संज्ञा दी गयी है। जो इसी अर्थ का द्योतक है।

इस विषय में डॉ. राधाकृष्णन मुखर्जी का मन्तव्य उल्लेख है-
'मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत उन इच्छाओं और लक्ष्यों के रूप में भाषित किए जा सकते हैं, जिन्हें अनुबन्ध या सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा आध्यान्तरी कृत अधिगम किया जाता है और जो आत्मनिष्ठ अधिमान-मान तथा आकांक्षाओं का रूप धारण कर लेते हैं।'

वैसे तो भारतीय शिक्षा की एक-एक अमूल्य अवधारणाएँ जो समाज को उत्तम दिशा दे सकती है।

प्राचीन स्वरूप में शिक्षा का आप मूल्य लगा नहीं सकते कि कितनी मूल्यवान शिक्षा थी। धार्मिक अवधारणाओं का दर्शन करें तो यह ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कारवान थे वे संस्कारों में विश्वास करते थे, सोलह संस्कार क्रमश: जन्म से मरण तक होते थे। प्रात:काल पृथ्वी को नमस्कार करके ही परिजनों से मिलते थे। कितना प्रेम था इस पृथ्वी से, यह क्रम यहीं से नहीं खत्म होता अपितु बुजुर्गों को प्रणाम सुश्रूषा आदि करके सोते थे, उक्त भी है-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोप सेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

पूर्वोक्त इस अमूल्य मन्त्र की अवधारणा कितनी प्रासंगिक है। अब आप इस शिक्षा के राष्ट्र प्रेम की अवधारणा देखिए–

न यत्र देशोद्धृतकामनास्ते
न मातृ भूमेर्हितचिन्तनं च ।
न राष्ट्ररक्षाबलिदानभावः
श्मशानतुल्यं नर जीवनं तत्।

(कापिलस्य)

जो अपने राष्ट्र (देश) के कल्याण की तथा मातृभूमि रक्षा की तथा राष्ट्र के लिए नहीं सोचता उसका जीवन श्मशान के बराबर है। देश–प्रेम**'भक्तिश्च' 'जन्मिनोनिवार्य कर्तव्यम'**।

ऋग्वेद की एक उक्ति है– **'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्'** (ऋग्वेद १०.१२५.३) तथा यजुर्वेद में **'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः'** (यजु. ९.२३)।

भारतीय अवधारणा पूरे विश्व को अपना परिवार मानता है और भी कामना करता है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

सभी के लिए सुखी, निरोगी एवं कल्याणकारी दृश्य देखने तथा कोई कष्ट न हो, ऐसी प्रार्थना की है। यह सुन्दर प्रार्थना किसी नवीन शिक्षा की अवधारणा नहीं हैं, कृतज्ञ होने की अवधारणा दीप से उदाहरण के तौर पर सीखने की जरूरत है।

लगभग यही अवधारणाएँ प्राचीन शिक्षा मूल्यों के विषय में बनती है। संक्षेप में यह प्राचीन शिक्षा मूल्य की अवधारणा में सबल चित्र बनाती है।

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज

पुराणों में पर्यावरण

*कृष्णचन्द्र शुक्ल

वेदों के उपबृंहक पुराणों ने भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन में अश्रुत पूर्व योगदान दिया है। मानव की सर्वांगीण उन्नति में मार्गदर्शन का कार्य पुराण करते हैं। श्रुति–स्मृति के मूलभूत सिद्धान्तों को मानव के व्यवहारिक जीवन के साथ जोड़ने का कार्य सेतु बन पुराणों ने किया है। सच्चिदानन्द परमात्मा का अंश होने के कारण जीवन भी सत् है इसलिए उसमें शाश्वत जीवन एवं अमरत्व की गूढ़ इच्छा है, चित् है इसलिए उसमें अनन्त ज्ञान की जिज्ञासा है, आनन्द है इसलिए अखण्ड आनन्द की आकांक्षा है। विकास के क्रम में मनुष्य सबसे आगे है क्योंकि उसको बुद्धि जो प्राप्त हुई है। परन्तु लोभादि विकारों से ग्रस्त होकर बुद्धि का परिवर्तन एवं प्रगति के नाम पर दुरुपयोग करने लगता है, तब उसका जीवन अशान्त एवं भयावह हो जाता है। आज का मनुष्य समाज का और अपना विध्वंसक शत्रु बन गया है, लोभ, अहंकार, स्वार्थ, घृणा, विद्वेष व विषाद से अभिभूत होकर मानव आत्मघाती हो गया है। बुद्धिवाद के नाम पर प्रकृति प्रदत्त अपने चारों ओर की सुरक्षा ढाँचों को ध्वस्त कर रहा है। मशीन ने मनुष्य को प्रकृति से दूर हटाकर मशीनी विलासप्रिय आलसी और दुर्बल बना दिया है। प्रकृति एवं प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुभूति से दूर हो जाने से मन की प्रतिशोधात्मक शक्ति विलुप्त हो गयी है।

गीता के अनुसार प्रकृति दो प्रकार की है, आठ विभागों, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार वाली जडप्रकृति तथा जीवनभूत पराप्रकृति। प्रकृति माता की तरह है जो हम बालकों का पोषण स्वाभाविक रूप से करती रहती है। जिस प्रकार यदि हम माँ के अंगों को ही स्वार्थवश हानि पहुँचाये तो हमारा ही आत्मविनाश होगा। उसी प्रकार प्रकृति के उपर्युक्त सभी अंगो का सम्यक् संरक्षण आवश्यक है।

आज की बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही प्रकार के पर्यावरणीय असन्तुलन की समस्या से हम जूझ रहे हैं। इसका कारण हम अपनी भारतीय परम्परा यानी अध्यात्म नियंत्रित भौतिक उन्नति या धर्म नियन्त्रित अर्थ काम का सेवन करना छोड़ विदेशी प्रभाव से अन्धी दौड़ लगा रहे हैं।

प्रत्येक पदार्थ तभी एक अपनी निरोग अवस्था में रह सकता है। जब तक उस पदार्थ की प्राणशक्ति की समता में हानि उत्पन्न न हो।

जिस प्रकार मनुष्य–शरीर में प्राण शक्ति की समता रहने से बात–पित्त–कफ और अन्यान्य धातुओं का भी सामन्जस्य रहता है और शरीर निरोग रहता है। परन्तु असंयम श्रमाधिक्य क्रोधादि विकारों से ग्रस्त होने से उसकी प्राणशक्ति घट जाती है। शारीरिक सन्तुलन विगड़ कर वह क्षीण हो जाता है और सम्पूर्ण नष्ट भी हो जाता है। उसी प्रकार समष्टि यानी ब्रह्माण्ड शरीर की तरह ही प्राणशक्ति की समता एवं सामन्जस्य से निरोग बना रहता है। जड़ प्रकृति के पृथिव्यादि पंचतत्वों में विकृति उत्पन्न होने से ऋतु विपर्यय अति वृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी आदि का भय उत्पन्न होता है।

पंचतत्त्वों के जिस प्रकार परिणाम के द्वारा सुजला सुफला वसुन्धरा अपनी निर्दिष्ट गति को प्राप्त कर रही है और विराट पुरुष का स्थूल ब्रह्माण्ड शरीर निरोगता पर प्रतिष्ठित है। उस प्राकृतिक गति को यदि बलात् अप्राकृतिक बनाने की कुचेष्टा की जाय जल जिस गति के अनुसार नदी समुद्र आदि रूप में चलने से जगत जीवन की रक्षा कर सकता है। वायु जिस गति से प्रवाहित होने पर संसार को स्थिति विधान कर सकता है। पृथ्वी जिस प्रकार सुसेवित होकर सुफल प्रदान कर सकती है। इन सब में यदि अप्राकृतिक अनुष्ठान किया जाय तो पर्यावरण असुरक्षित होकर ग्लोबल वार्मिंग का बढ़ना, ओजोन पर्त में छिद्र होना, बादलों का फटना उत्तरा खण्ड में आयी विपदा जैसी विपदाओं का आना जिससे जगत की या उस देश की विशेषकर उस भू–भाग की शान्ति नष्ट होकर अशान्ति और दुःख दारिद्रय बढ़ जाता है।

अध्यात्मिकता विहीन केवल भौतिक वैज्ञानिक विकास प्रकृति पर इसी प्रकार प्रहार करते रहेंगे तो ब्रह्माण्ड की प्राण शक्ति की हानि होगा और पंचतत्त्वों में ऐसा ही वैशम्य होता रहेगा और हम असहाय होकर देखते रहेंगे। अति लोभी में यातायात को सुगम एवं भारी वाहनोंको चलने योग्य बड़े–बड़े राजमार्गों का निर्माण करने हेतु वृक्षों का अन्धाधुन्ध तरीके से काटा जाना दुर्लभ स्वास्थ्यवर्धक आरोग्यकारी प्रकृति प्रदत्त वन सम्प्रदाओं जड़ी बुटियों का विनाश ब्रह्माण्डव्यापिनी वैद्युत शक्ति को आकर्षित कर अन्यान्य कार्य में लगाना, नदियों के स्वाभाविक समुद्रगामी स्वरूप में विद्युत परियोजनाओं के नाम पर अस्वाभाविक बाँध आदि बनाकर विद्युत उत्पन्न करने आदि से विराट धातु में विकास उत्पन्न होता है। ब्रह्माण्ड शरीर के प्राणशक्ति के विनाश या प्राण वैशम्य द्वारा ही ऐसा बहुदेशव्यापी दुर्घटनाएँ होती है। महर्षि वसिष्ठ ने कहा है।

विराट्द्धातुविकारेण विषमस्पन्दनादिना। तदङ्गवयवस्यास्य जनजालस्य वैषमम्। दुर्भिक्षावग्रहोत्पातं मानयति।

अर्थात् विराट शरीर में तत्त्व विकार धातु विकार तथा प्राणशक्ति के विषम स्पन्दन से विराट की अंगीभूत जीवों की प्रकृति में विषमता उत्पन्न होती है। जिसमें दुर्भिक्ष अपग्रहों का उदय, उल्कापात, धूमकेतु आदि का उदय महामारी आदि उत्पन्न होने लगते हैं। पुराणों में न केवल व्यापक रूप से पर्यावरण के होने वाले असन्तुलनों का विचार किया है। अपितु उनका समाधान भी है, जो सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक रूप से हम मानवता के लिये नितान्त रूप से उपयोगी है। ऐसा मेरा दृढ़ अभिमत है। सम्पूर्ण पुराणों में इस प्रकार का विशाल साहित्य भरा पड़ा है। परन्तु अपनी - सीमाओं को देखते हुए मैंने केवल वैष्णव पुराणों के सन्दर्भ में पर्यावरण संरक्षणोपायो का अनुशीलन करने का निश्चय किया है। अपने वांगमय के आधार पर किया गया चिन्तन निश्चय ही अपने देश की भौगोलिक प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समाधानकारक होगा।

■

श्री गोरखनाथ मन्दिर के प्रकाशन

1.	गोरखदर्शन	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	150.00
2.	महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ	डॉ. भगवती प्रसाद सिंह	80.00
3.	नाथ योग	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	10.00
4.	आदर्श योगी	रघुनाथ शुक्ल	40.00
5.	महायोगी गुरु गोरखनाथ एवं उनकी तपस्थली	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
6.	गोरखवानी	रामलाल श्रीवास्तव	110.00
7.	गोरक्षसिद्धान्त संग्रह	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
8.	श्री गोरक्ष वैदिक पूजा पद्धति	वेदाचार्य रामानुज त्रिपाठी	8.00
9.	अमनस्क योग	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
10.	गोरक्ष पद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
11.	विवेक मार्तण्ड		7.00
12.	महार्थ मंजरी		6.00
13.	गोरखचरित्र	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
14.	हठयोग प्रदीपिका	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
15.	सिद्धसिद्धान्तपद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	25.00
16.	योग रहस्य	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	25.00
17.	योग बीज	रामलाल श्रीवास्तव	6.00
18.	शाबर चिंतामणि	नित्यनाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ	7.00
19.	योगी सम्प्रदाय (नित्कर्म संचय)		90.00
20.	गोरख चालीसा		2.00
21.	नाथसिद्ध चरितामृत	रामलाल श्रीवास्तव	70.00
22.	नाथ पंथ गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में	विष्णुदत्त कुकरेती	30.00
23.	अमरकाया महायोगी गोरखनाथ	श्रीमती माया देवी	10.00
24.	युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ ने कहा था	महन्त योगी आदित्यनाथ	12.00
25.	गोरखनाथ और नाथसिद्ध	डॉ. अनुज प्रताप सिंह	130.00
26.	गोरक्षदर्शन	विजय पाल सिंह	40.00
27.	तन प्रकाश	श्री श्री 108 बाबा चुन्नीनाथ जी	20.00
28.	हठयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
29.	यौगिक षट्कर्म	महन्त योगी आदित्यनाथ	21.00
30.	नाथ सिद्धों का तात्त्विक विवेचन	अनुज प्रताप सिंह	70.00
31.	गोरखमहिमा	महेन्द्र नाथ गोस्वामी	30.00
32.	सुभाषित त्रिशती	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
33.	राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ (3 खण्ड)	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	1100.00
34.	राजयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
35.	Philosophy of Gorakhnath	A.K. Banerjee	175.00
36.	The Nath-Yogi Sampradaya and The Gorakhnath Temple		3.50
37.	An Introduction to Nath-Yoga	A.K. Banerjee	15.00
38	महन्त अवेद्यानाथ स्मृति ग्रन्थ	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	600.00
39	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	500.00
40	योग एवं महायोगी गोरखनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	175.00
41	महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ		40.00
42	श्रीगोरखनाथ मन्दिर एवं गोरखपुर का इतिहास		40.00
43	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ		40.00
44	युगद्रष्टा महन्त दिग्विजयनाथ		50.00
45	राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ		50.00

ए.पी./जी.आर-125/14 ए.पी./29075/76

सिंघाड़ा
एक औषधि है

सिंघाड़ा आश्विन-कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर)-इसमें आनेवाला लोकप्रिय फल है। इसका पौधा बेल के रूप में होता है। बेल प्रायः वर्षा ऋतु में लगायी जाती है और फल जाडे की ऋतु प्रारम्भ होने के बाद आते हैं। इसका पौधा जलीय कहलाता है।

सिंघाड़े को लोग बड़े प्रेम से कच्चा ही खाते हैं। कब्चे सिंघाड़े को 'दूधिया सिंघाड़ा' भी कहते हैं। जब सिंघाड़े की मींगी (गिरी) कुछ कड़ी (पक्की) हो जाती है, तब इसे प्रायः उबालकर खाते हैं। मींगी के पकने पर हो सुखाकर ही संग्रह किया जाता है। इन्हीं शुष्क मोंगियों को कूट-पीसकर आटा बनाकर औषधि के रूप में अथवा व्रत (उपवास) आदि में सेवन करने के प्रयोग में लाया जाता है।

प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों के अनुसार सिंघाड़ा शीतल प्रकृति वाला फल है। यह खाने में स्वादिष्ट, भारी एवं ग्राही होता है। सिंघाड़ा मलशोषक, पित्त, रक्तविकार तथा रक्त-पित्तका शमन करने वाला होता है। यह वृष्य गुणवाला बाजीकारक, तापनिवारक, श्रमहारक, वीर्यवर्धक तथा उद्दीपक होता है। यह कुछ मात्रामें वायु और कफकी वृद्धि करनेवाला होता है, अतः वात एवं कफ-प्रकोप से ग्रसित लोगोंको इसका सेवन नहीं करना चाहिये। यदि करना ही पड़ जाय तो अत्यल्प मात्रामें करना चाहिये। सिंघाड़ेका किसी भी रूपमें नियमित सेवन 'बल्य' (बलकारक) होता है।

रासायनिक विश्लेषण करने से पता चलता है कि सिंघाड़े के १०० ग्राम खाने योग्य भाग में लगभग ७० ग्राम क्षारजल, ५.२५ ग्राम वसा, ४.५ ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स, ३.२५ ग्राम प्रोटीन तथा समुचित मात्रा में कैल्सियम, फास्फोरस और अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण खनिज लवण तत्व विद्यमान रहते हैं। सिंघाड़े में खनिज, क्षार की मात्रा, गाय-भैंस के दूध की तुलना में बाईस प्रतिशत अधिक होती है।

यह एक अनुभव की बात है कि सिंघाड़े का सेवन त्रिदोष, भ्रम, मोह तथा सूजन को दूर करता है। यह दाह का शमन करता है, अवसाद, शुक्र, प्रमेह एवं स्वप्नदोष आदि रोगों में पर्याप्त लाभ पहुँचाता है। सिंघाड़े का सेवन करने से शरीर का क्षय जल्दी ही रुक जाता है। इसके सेवन से गुदा-मार्ग से होने वाला रक्तस्त्राव भी बंद हो जाता है। पित्त-प्रकृति वालों को सिंघाड़े के मौसम में इसका पर्याप्त सेवन अवश्य करना चाहिये। सिंघाड़े में मांसवर्द्धक गुण होता है, अतः जो दुबले-पतले और शक्तिहीन हैं; उन्हें इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

गर्भवती महिलाओं के लिये यह अच्छा खाद्य है। इसके नियमित एवं उपयुक्त मात्रा में सेवन करने से गर्भस्थ शिशु स्वस्थ तथा सुन्दर बनता है। बच्चा में कुपोषण का शिकार नहीं होता। प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने सिंघाड़े की प्रशंसा करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि यदि गर्भवती स्त्री सिंघाड़े का पर्याप्त मात्रा में उचित सेवन करे तो उसका मूढ़गर्भ भी सजीव हो उठता है। इससे सिद्ध होता है कि सिंघाड़ा गर्भावस्था में अत्यधिक लाभकारी होता है।

यदि कोई महिला गर्भाशय के दौर्बल्य की शिकार हो, गर्भाशय की दुर्बलता के कारण जिसे गर्भ न ठहरता - हो, बार-बार गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता हो तो उसे सिंघाड़े के आटे से बने हलवे या लपसी का दूध एवं शक्कर के साथ प्रातः सायं प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

स्त्रियों के श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर रोगों में भी यह फल लाभकारी है। श्वेतप्रदर में स्त्रीके बलाबल के अनुसार ४० ग्राम से ५० ग्राम तक सिंघाड़े का हलवे के रूप में तीन से चार सप्ताह तक सेवन करने से रोग से मुक्ति मिल जाती है। साथ ही शरीर पुष्ट होता है। रक्तप्रदर की स्थिति में हलवे की अपेक्षा इसके आटे से बनी रोटियाँ अधिक लाभ पहुँचाती हैं। इनका सेवन भी तीन-चार सप्ताह तक करना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्रता, पेशाब की जलन, कठिनाई से पेशाब का उतरना आदि रोग होने पर सिंघाड़े का मौसम हो तो ताजे सिंघाड़े का १०० ग्राम से २०० ग्राम तक प्रयोग करे, अन्यथा सिंघाड़े के क्वाथ का प्रयोग करे।

(श्रीसुरेन्द्रकुमारजी 'महाराज')

प्रकाशक :
गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर-२७३०१५
web: www.gorakhnathmandir.in | E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com
दूरभाषः (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४, फैक्सः ०५५१-२२५५४५५